

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 16: जम्बूद्वीप और सुमेरु

22 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



जम्बूद्वीप, वह भूमि जिसमें हम निवास करते हैं, जल पर एक खिले हुए कमल के समान शोभित है — स्वर्णिम सुमेरु उसके हृदय में कर्णिका के रूप में उठता हुआ, सीमा-पर्वतों और नौ वर्षों से घिरा, समूची पृथ्वी भगवान् की अपनी रचना का एक पुष्प।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

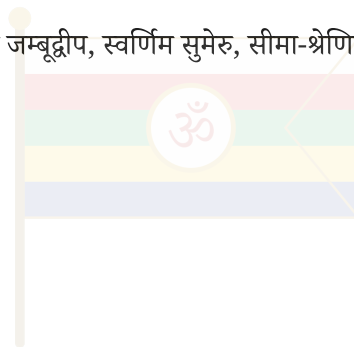
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। सम्राट् प्रियव्रत और उनके वंश में जन्मे साधु राजाओं की कथा सुनने के पश्चात्, राजा परीक्षित अब अपना हृदय हमारे पैरों के नीचे की उसी पृथ्वी की ओर मोड़ते हैं — किसी निर्जीव वस्तु के रूप में नहीं, अपितु भगवान् के प्रत्यक्ष रूप के रूप में। पंचम स्कन्ध के इस सोलहवें अध्याय में,

श्रीशुकदेव गोस्वामी जम्बूद्वीप का एक दर्शन प्रकट करते हैं, वह कमल-सदृश भूमि जिसमें हम रहते हैं: उसके केन्द्र में स्वर्णिम सुमेरु, उसके वर्षों को विभाजित करती पर्वत-श्रेणियाँ, अमृत की नदियों वाले महान् वृक्ष, और पर्वत के शिखर पर ब्रह्मा की देदीप्यमान नगरी। यह विस्मय से ग्रहण करने योग्य एक अध्याय है, क्योंकि ऋषि इसे एक द्वार के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिससे मन, भगवान् के विराट् रूप पर टिककर, उनके परात्पर स्वरूप की ओर खिंच जाता है।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 16 (षोडश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: जम्बूद्वीप और सुमेरु पर्वत के आश्चर्य
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को उत्तर देते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: जम्बूद्वीप, भूमण्डल के सात संकेन्द्रित द्वीपों में सबसे भीतरी, जिसके केन्द्र में स्वर्णिम सुमेरु पर्वत है
- केन्द्रीय विषय: भूमण्डल का विस्तार, आकार और आश्चर्य — कमल-सदृश जम्बूद्वीप, स्वर्णिम सुमेरु, सीमा-श्रेणियाँ और नौ वर्ष, अमृत की नदियों वाले महान् वृक्ष, तथा ब्रह्मा एवं लोकपालों की नगरियाँ
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 1-29
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से

पंचम स्कन्ध का पन्द्रहवाँ अध्याय भरत के वंशजों के माध्यम से सम्राट् प्रियव्रत की उदात्त वंश-परम्परा को आगे बढ़ाता है, और साधु राजा गय पर श्रद्धा से ठहरता है, जिनकी भक्ति और सद्गुण अपने पूर्वजों में देदीप्यमान थे। उस महान् वंश में जन्मे राजाओं की महिमा सुनकर, राजा परीक्षित अब पृथ्वी के शासकों से मुड़कर स्वयं पृथ्वी की ओर आते हैं — उसका माप, उसका आकार और उसके आश्चर्य।

राजा का प्रश्न

राजा परीक्षित को स्मरण था कि उनके गुरु ने भूमण्डल का वर्णन उस समस्त विस्तार तक फैले हुए के रूप में किया था जहाँ सूर्य अपना प्रकाश देता है और जहाँ चन्द्रमा तथा तारे दिखाई देते हैं, और यह कि उसके भीतर वे सात समुद्र हैं जो सम्राट् प्रियव्रत के रथ-चक्रों की रेखाओं से बने, जिन्होंने पृथ्वी को सात द्वीपों में विभाजित किया। अब राजा यह सब पूर्णतया जानना चाहते थे — किन्तु उन्होंने तथ्य बटोरने वाले के रूप में नहीं, अपितु भगवान् को खोजते एक भक्त के रूप में पूछा। क्योंकि, जैसा उन्होंने कहा, भगवान् के विराट् स्थूल रूप पर पहले स्थिर हुआ मन अन्ततः उस सूक्ष्म, स्वयं-प्रकाशमान परमतत्त्व की ओर मुड़ने योग्य हो जाता है जिसे भगवान् वासुदेव कहते हैं।

भगवतो गुणमये स्थूलरूप आवेशितं मनो ह्यगुणेऽपि सूक्ष्मतम आत्मज्योतिषि परे ब्रह्मणि भगवति वासुदेवाख्ये क्षममावेशितुं तदु हैतद्
गुरोऽर्हस्यनुवर्णयितुमिति ॥ ३ ॥

*bhagavato guṇamaye sthūla-rūpa āveśitaṁ mano hy aguṇe 'pi sūkṣmatama ātma-jyotiṣi pare
brahmaṇi bhagavati vāsudevākhye kṣamam āveśitum tad u haitad guro 'rhasy anuvārṇayitum
iti*

अर्थ: जब मन पहले भगवान् के स्थूल भौतिक रूप में — तीन गुणों से बने इस विश्व में — लीन होता है, तब वह क्रमशः उस सूक्ष्म, स्वयं-
प्रकाशमान, परात्पर परब्रह्म में लीन होने योग्य हो जाता है जिन्हें भगवान् वासुदेव कहते हैं; इसलिए, हे मेरे गुरु, कृपया इसका वर्णन कीजिए।
(स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 3)



श्रीशुकदेव गोस्वामी के चरणों में बैठे, राजा परीक्षित अपने गुरु से भूमण्डल का पूर्ण वर्णन करने की प्रार्थना करते हैं, भगवान् के विराट् प्रत्यक्ष रूप के द्वारा उनके परात्पर स्वरूप तक पहुँचने की अभिलाषा से (श्लोक 1-3)।

ऋषि का उत्तर और कमल-सदृश पृथ्वी

ऋषि ने प्रश्न को विनम्रता से ग्रहण किया। कोई मनुष्य, उन्होंने कहा, अपने मन से भी उस अपार विस्तार को नाप नहीं सकता, शब्दों में तो कहना दूर, जिसे भगवान् की माया-शक्ति ने इस विश्व के रूप में प्रकट किया है। इसलिए वे केवल उसी का वर्णन करेंगे जो कहा जा सकता है: भूमण्डल के मुख्य लक्षण। वह भूमि जिसमें हम निवास करते हैं, उन्होंने आरम्भ किया, उसे उन्होंने स्वयं एक कमल के समान बताया।

यो वायं द्वीपः कुवलयकमलकोशाभ्यन्तरकोशो नियुतयोजन विशालः समवर्तुलो यथा पुष्करपत्रम् ॥ ५ ॥

*yo vāyaṁ dvīpaḥ kuvalaya-kamala-kośābhyantara-kośo niyuta-yojana-viśālaḥ samavartulo
yathā puṣkara-patram*

अर्थ: यह द्वीप जिसमें हम रहते हैं, कमल-सदृश पृथ्वी का सबसे भीतरी कोश है; यह एक लाख योजन विस्तृत और पूर्णतया गोल है, कमल की कर्णिका के समान। (स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 5)

इस कमल-भूमि के भीतर, उन्होंने बताया, नौ वर्ष अर्थात् प्रदेश हैं, प्रत्येक नौ हजार योजन विस्तृत, आठ महान् पर्वत-श्रेणियों से स्पष्टतया विभाजित जो उनकी सीमाएँ बनाती हैं।

इलावृत के हृदय में स्वर्णिम सुमेरु

इन नौ वर्षों के ठीक मध्य में इलावृत नामक भीतरी भूमि है, और उसके हृदय में समस्त पर्वतों का राजा — मेरु, जिसे सुमेरु भी कहते हैं — उठता है, जो पूर्णतया स्वर्ण का बना है और कमल-भूमि की कर्णिका ही बनता है।

एषां मध्ये इलावृतं नामाभ्यन्तरवर्षं यस्य नाभ्यामवस्थितः सर्वतः सौवर्णः कुलगिरिराजो मेरुर्द्वीपायामसमुन्नाहः कर्णिकाभूतः
कुवलयकमलस्य मूर्धनि द्वात्रिंशत् सहस्रयोजनविततो मूले षोडशसहस्रं तावतान्तर्भूम्यां प्रविष्टः ॥ ७ ॥

*eṣāṁ madhye ilāvṛtaṁ nāmābhyantara-varṣaṁ yasya nābhyām avasthitaḥ sarvataḥ sauvarṇaḥ
kula-giri-rājo merur dvīpāyāma-samunnāhaḥ karṇikā-bhūtaḥ kuvalaya-kamalasya mūrdhani
dvā-triṁśat sahasra-yojana-vitato mūle ṣoḍaśa-sahasraṁ tāvat āntar-bhūmyām praviṣṭaḥ*

अर्थ: इन भूमियों के मध्य इलावृत नामक भीतरी वर्ष है, और उसके हृदय में समस्त पर्वतों का राजा स्वर्णिम मेरु खड़ा है, जो द्वीप के विस्तार जितना ऊँचा है और कमल-भूमि की कर्णिका बनता है — अपने शिखर पर बत्तीस हजार योजन विस्तृत, मूल में सोलह हजार, और उसकी जड़ भूमि के नीचे सोलह हजार योजन तक धँसी हुई। (स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 7)



स्वर्णिम मेरु, पर्वतों का राजा, इलावृत के केन्द्र में कमल-भूमि की कर्णिका के रूप में उठता है, अपने देदीप्यमान शिखर पर विस्तृत और भूमि के नीचे गहराई तक जड़ जमाए (श्लोक 7)।

भूमे को विभाजित करती पर्वत-श्रेणियाँ

इस स्वर्णिम केन्द्र के चारों ओर वे श्रेणियाँ खड़ी हैं जो एक वर्ष को दूसरे से अलग करती हैं। इलावृत के उत्तर में नील, श्वेत और शृंगवान् उठते हैं, जो रम्यक, हिरण्मय और कुरु वर्षों की सीमा बनाते हैं। दक्षिण में निषध, हेमकूट और हिमालय उठते हैं, जो हरिवर्ष, किम्पुरुषवर्ष और भारतवर्ष की सीमा बनाते हैं — यह अन्तिम वह पावन भूमि है जिसमें हम स्वयं निवास करते हैं। और पश्चिम तथा पूर्व में माल्यवान् और गन्धमादन खड़े हैं, जो केतुमाल और भद्राश्व की सीमा बनाते हैं। इस प्रकार एक ही कमल-भूमि अपनी आठ श्रेणियों से नौ देदीप्यमान वर्षों में विभाजित है, और स्वर्णिम मेरु सबके केन्द्र में सिंहासनासीन है।

चार महान् वृक्ष, सरोवर और उद्यान

मेरु के चारों ओर चार पर्वत खड़े हैं — मन्दर, मेरुमन्दर, सुपार्श्व और कुमुद — जो केन्द्रीय शिखर को थामे स्तम्भों के समान हैं। उन पर चार महान् वृक्ष उठते हैं, ध्वजाओं के समान खड़े: एक आम, एक जम्बू अर्थात् गुलाब-जामुन, एक कदम्ब और एक वट, प्रत्येक ग्यारह सौ योजन ऊँचा, उनकी शाखाएँ अपनी ऊँचाई जितनी ही चौड़ी फैली हुई।

निकट ही चार महान् सरोवर हैं — दूध, मधु, इक्षुरस और शुद्ध मीठे जल के — जिनके जल का स्पर्श करते और पान करते उपदेवगण अपने स्वभाव से ही योग की सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं; और चार दिव्य उद्यान भी हैं: नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र।

ह्रदाश्चत्वारः पयोमध्विक्षुरसमृष्टजला यदुपस्पर्शिन उपदेवगणा योगैश्वर्याणि स्वाभाविकानि भरतर्षभ धारयन्ति ॥ १३ ॥ देवोद्यानानि च भवन्ति चत्वारि नन्दनं चैत्ररथं वैभ्राजकं सर्वतोभद्रमिति ॥ १४ ॥

hradās catvāraḥ payo-madhv-ikṣurasa-mṛṣṭa-jalā yad-upasparśina upadeva-gaṇā yogaiśvaryaṇi svābhāvikaṇi bharatarṣabha dhārayanti; devodyānāni ca bhavanti catvāri nandanam caitraratham vaibhrājakaṁ sarvatobhadram iti

अर्थ: चार सरोवर हैं — दूध, मधु, इक्षुरस और शुद्ध जल के — और जो उपदेवगण उनका पान करते हैं वे स्वभाव से ही योग-सिद्धियाँ प्राप्त कर लेते हैं, हे भरतश्रेष्ठ; और चार दिव्य उद्यान हैं: नन्दन, चैत्ररथ, वैभ्राजक और सर्वतोभद्र। (स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 13-14)

वहाँ श्रेष्ठ देवगण अपना विहार करते हैं, और उपदेवगणों के समूह उनकी महिमा गाते हैं।



मेरु के चार स्तम्भ-पर्वतों पर चार महान् वृक्ष ध्वजाओं के समान उठते हैं — आम, गुलाब-जामुन, कदम्ब और वट — दूध, मधु, इक्षुरस और मीठे जल के चार सरोवरों के साथ (श्लोक 11-15)।

चार महान् वृक्षों से अमृत की नदियाँ

इन विशाल वृक्षों से आश्चर्य की नदियाँ बहती हैं। मन्दर पर्वत पर आम के वृक्ष के शिखर से, पर्वत-शिखरों जितने विशाल और अमृत जैसे मधुर फल गिरते हैं; उनके फूट पड़ने से, सुगन्धित, लाल रस से अरुणोदा नदी जन्म लेती है, जो शिखर से बहकर इलावृत के पूर्वी भाग को सींचती है, इतनी मधुर कि वायु उसकी सुगन्ध दस योजन तक चारों ओर ले जाती है।

इसी प्रकार, जम्बू वृक्ष के गुलाब-जामुनों से — प्रत्येक हाथी जितना विशाल — जम्बू नदी उमड़ती है, जो मेरुमन्दर के शिखर से गिरकर इलावृत के दक्षिणी भाग को सींचती है। और यहाँ उसके तटों पर एक आश्चर्य घटित होता है।

तावदुभयोरपि रोधसोर्या मृत्तिका तद्रसेनानुविध्यमाना वाय्वर्कसंयोगविपाकेन सदामरलोकाभरणं जाम्बूनदं नाम सुवर्णं भवति ॥ २० ॥ यदु ह वाव विबुधादयः सह युवतिभिर्मुकुटकटककटिसूत्राद्याभरणरूपेण खलु धारयन्ति ॥ २१ ॥

tāvad ubhayor api rodhasor yā mṛttikā tad-rasenānuvidhyamānā vāyv-arka-saṁyoga-vipākena sadāmara-lokābharaṇaṁ jāmbū-nadaṁ nāma suvarṇaṁ bhavati; yad u ha vāva vibudhādayaḥ saha yuvatibhir mukuṭa-kaṭaka-kaṭi-sūtrādy-ābharaṇa-rūpeṇa khalu dhārayanti

अर्थ: उस नदी के दोनों तटों की मिट्टी, उस रस से सिंचकर और वायु तथा सूर्य के संयोग से पककर, जाम्बूनद नामक स्वर्ण में बदल जाती है, जो अमरों का शाश्वत आभूषण है, जिसे देवगण और उनकी देवियाँ मुकुट, कंगन और कटिसूत्र के रूप में धारण करते हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 20-21)

किन्तु ऋषि इस वर्णन को व्यर्थ कौतुक के रूप में नहीं छोड़ते। कि वहाँ नदी-तट की साधारण मिट्टी ही अमरों को सुशोभित करने वाला स्वर्ण बन जाती है, यह सम्पूर्ण दिव्य व्यवस्था का एक संकेत है, और वैष्णव आचार्य सदा इसमें एक मौन चेतावनी पढ़ते आए हैं (श्लोक 20-21): जो इस पृथ्वी के लिए धन है, वह भगवान् की सृष्टि के उच्चतर क्षितिज में साधारण धूलि मात्र है, और जिस आत्मा ने भगवान् की भक्ति का रसास्वादन कर लिया है, वह देवताओं के आभूषणों को स्वर्ण-मृत्तिका से अधिक नहीं समझती। यह शिक्षा तब और भी तीक्ष्ण हो जाती है जब हम इस पृथ्वी के अभावग्रस्त संसार को देखते हैं — जहाँ अभाव, स्वर्ण की एक छोटी-सी उधार ली हुई झलक को भी अनजान लोगों के लिए दिव्यत्व का प्रमाण बना देता है। ऋषि का यह सम्पूर्ण दर्शन धीरे से यही कहता है कि सच्चा धन कभी धातु नहीं, अपितु भगवान् के चरणों की शरण ही है।

वृक्ष और भी देते हैं। सुपार्श्व पर्वत पर स्थित महान् कदम्ब की कोटरों से मधु की पाँच धाराएँ बहती हैं, जो इलावृत के पश्चिमी प्रदेश को आनन्दित करती हैं; और कुमुद पर्वत पर शतवल्श नामक वट से वह सब बहकर आता है जिसकी कोई कामना कर सके — दूध और दही, मधु और घृत, अन्न, तथा वस्त्र, शय्या और आभूषण भी — जो उत्तरी प्रदेश को अनुगृहीत करते हैं। और जो इन नदियों का सेवन करते हैं, उनके विषय में ऋषि हमें एक सुन्दर बात बताते हैं: उन्हें कभी झुर्रियाँ या श्वेत केश, वृद्धावस्था या रोग या अकाल-मृत्यु नहीं होती, अपितु वे अपना समस्त जीवन अपरिमित सुख में बिताते हैं।



महान् वृक्षों के फलों से अमृत की नदियाँ बहती हैं — लाल अरुणोदा और जम्बू, जिसका रस उसके तटों की मिट्टी को जाम्बूनद नामक स्वर्ण में पका देता है (श्लोक 16-21)।

मेरु के चारों ओर के पर्वत और ब्रह्मा की नगरी

कमल की कर्णिका को घेरते केसरों के समान, मेरु के मूल के चारों ओर बीस पर्वत खड़े हैं — उनमें कुरंग, त्रिकूट, शिशिर, शंख, वैदूर्य, हंस, ऋषभ और नारद हैं। और उनसे भी निकट, चारों दिशाओं की रक्षा करते, आठ महान् पर्वत उठते हैं: पूर्व में जठर और देवकूट, पश्चिम में पवन और पारियात्र, दक्षिण में कैलास और करवीर, तथा उत्तर में त्रिशृंग और मकर। इन आठ से घिरा, स्वर्णिम सुमेरु कुश के तिनकों से घिरी पवित्र अग्नि के समान चमकता है।

मेरु के शिखर पर, सबके ठीक केन्द्र में, स्वयम्भू ब्रह्मा की नगरी खड़ी है, जो पूर्णतया स्वर्ण की बनी है — एक विशाल और देदीप्यमान चौकोर क्षेत्र, प्रथम सृष्ट प्राणी का आसन।

*meror mūrdhani bhagavata ātma-yoner madhyata upakṛptām purīm ayuta-yojana-sāhasrīm
sama-caturasrām śātaikaumbhīm vadanti*

अर्थ: मेरु के शिखर पर, उसके ठीक केन्द्र में, स्वयम्भू ब्रह्मा की स्वर्णिम नगरी खड़ी है; ज्ञानीजन उसे विशाल विस्तार का एक चौकोर क्षेत्र बताते हैं, पूर्णतया स्वर्ण से रचित। (स्कन्ध 5, अध्याय 16, श्लोक 28)

उस नगरी के चारों ओर, उसी प्रतिमान पर रचित, दिशाओं के आठ रक्षकों — इन्द्र आदि — की आठ नगरियाँ खड़ी हैं, प्रत्येक अपनी नियत दिशा में और ब्रह्मा की अपनी नगरी के एक-चौथाई विस्तार की। इस प्रकार ऋषि भूमण्डल का अपना दर्शन पूर्ण करते हैं, मेरु के स्वर्णिम शिखर तक जहाँ सृष्टि के रक्षक निवास करते हैं।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

पृथ्वी स्वयं भगवान् का ही एक रूप है। परीक्षित संसार के विषय में व्यर्थ कुतूहल से नहीं पूछते, अपितु इसलिए कि भगवान् के विराट् प्रत्यक्ष रूप पर टिकता मन उनके निराकार स्वरूप पर टिकने के लिए तैयार किया जा रहा है। सृष्टि को विस्मय से देखना भक्ति का आरम्भ है — और, जैसा स्वयं शुकदेव स्वीकार करते हैं कि भगवान् की माया किसी मन से नापी नहीं जा सकती, उसे विनम्रता से देखना भी।

संसार कमल के समान रचा गया है। कमल, जो जल में जन्मकर भी उससे अछूता रहता है, पृथ्वी के लिए शास्त्र का अपना प्रतीक है — गोल और खुला, स्वर्णिम मेरु उसकी कर्णिका — यह स्मरण कि संसार उसी भगवान् पर टिका है जिनकी नाभि से प्रथम कमल प्रकट हुआ।

समृद्धि एक दिव्य केन्द्र से बहती है। अमृत की नदियाँ उँड़लते वृक्ष, प्रत्येक शुभ वस्तु देती धाराएँ, स्वर्ण बनती तटों की मिट्टी — ये सब भगवान् की उदारता से उमड़ती एक सृष्टि की बात कहते हैं। और जैसे श्रेणियाँ, पर्वत और नगरियाँ स्वर्णिम मेरु के चारों ओर सजी खड़ी हैं, वैसे ही भक्त जीवन के प्रत्येक अंश को एक ही पावन केन्द्र — भगवान् — के चारों ओर व्यवस्थित करना सीखता है।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

राजा परीक्षित के पर्वतों, समुद्रों और मापों के विषय में पूछने के ढंग में, और उनके गुरु के उत्तर देने के ढंग में एक शान्त कोमलता है। यह किसी ऐसे की जिज्ञासा नहीं जो पृथ्वी को जीतना चाहे, अपितु एक ऐसी आत्मा की अभिलाषा है जो भगवान् के बनाए की महानता देखकर उन्हें और अधिक प्रेम करना चाहती है। यह समूचा दर्शन — कमल-भूमि, स्वर्णिम पर्वत, वे नदियाँ जिनके तट स्वर्ण बन जाते हैं — किसी सुलझाई जाने वाली पहेली के रूप में नहीं, अपितु ग्रहण किए जाने वाले एक आश्चर्य के रूप में दिया गया है; और जब हम स्वयं को इस पर विस्मित होने देते हैं, तब हृदय कोमलता से दृश्य से उस अदृश्य की ओर ले जाया जाता है जो उसे धारण करता है। यही, ऋषि आरम्भ में ही हमें बताते हैं, समस्त प्रयोजन है: कि मन, पहले भगवान् के विराट् रूप पर स्थिर होकर, अन्ततः उस तत्त्व तक ले जाया जाए जो भगवान् वासुदेव है। इस अध्याय को धीरे-धीरे पढ़ना स्वयं एक प्रकार की आराधना है।

एक दैनिक भाक्ते-साधना

आज, कुछ शान्त क्षणों के लिए बाहर निकलिए और पृथ्वी के किसी छोटे-से अंश को देखिए — क्षितिज पर एक पहाड़ी, एक नदी, फलों से लदा एक वृक्ष, सूर्य या चन्द्रमा का प्रकाश। उसे यूँ ही जाने देने के बजाय, रुककर स्मरण कीजिए, जैसा शुकदेव सिखाते हैं, कि यह दृश्य जगत् भगवान् का स्थूल रूप है, जो मन को उनकी ओर ले जाने के लिए रचा गया है। जो विस्मय आप अनुभव करें, उसे एक प्रार्थना बनने दीजिए, और मन ही मन कहिए: “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।” ध्यान के इस सरल मोड़ में — जो बना है उससे उस ओर जिसने बनाया — आप वही अभ्यास करते हैं जो यह अध्याय सिखाता है।

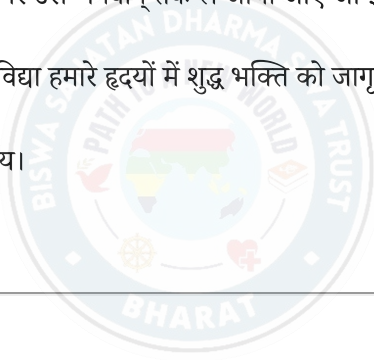
उपसंहार

पंचम स्कन्ध का सोलहवाँ अध्याय भूमण्डल का एक दर्शन खोलता है जो भगवान् का प्रत्यक्ष रूप है। राजा परीक्षित के उत्तर में, शुकदेव जम्बूद्वीप का, वह भूमि जिसमें हम रहते हैं, वर्णन एक लाख योजन विस्तृत कमल के रूप में करते हैं, जिसके केन्द्र में स्वर्णिम मेरु पुष्प की कर्णिका के समान उठता है। वे उन आठ श्रेणियों की बात करते हैं जो भूमि को नौ वर्षों में विभाजित करती हैं, अपने महान् वृक्षों से मण्डित चार स्तम्भ-पर्वतों की, और अमृत की उन नदियों की जिनके तट स्वर्ण बन जाते हैं और जिनका जल पान करने वाले सबको वृद्धावस्था और शोक से मुक्त करता है। शिखर पर ब्रह्मा की स्वर्णिम नगरी खड़ी है, रक्षकों की नगरियों से घिरी। इन सबमें एक ही विस्मय का स्वर बहता है — कि मन, इस विराट् सृष्टि पर टिककर, उससे परे उस भगवान् तक ले जाया जाए जो इसके स्रोत और शरण हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, षोडश अध्याय, “A description of the terrestrial world।”
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान - विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है, और किसी संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-16-jambudvipa-and-mount-meru-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

